महावीर वाणी

लेखक - प.पू. मुनिराज श्री अरुणविजयजी महाराज के उपदेशों का संग्रह

श्री हथुण्डी तीर्थ मण्डन
श्री राता महावीर स्वामी भ.

भाग-१

-संकलन-संपादन-

पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजय गणि म.

-प्रकाशक-

श्री महावीर वाणी प्रचार केन्द्र-हथूण्डी तीर्थ।

श्री महावीर विद्यार्थि कल्याण केन्द्र वम्बई।

पुस्तक नाम	-महावीर वाणी भाग१
आधारभूत आगम शास्त्र	-उत्तराध्ययन सूत्र आदि आगम शास्त्र
संकलनकार	-पंन्यास प्रवरश्री अरूणविजय गणि म.
प्रकाशक	-श्री महावीर विद्यार्थि कल्याण केन्द्र, ३६, वसन्त विलास, २ री मंजिल डॉ डी डी साठे मार्ग, प्रार्थना समाज, वम्बई-४०००० ४
प्रति-१०००	वि सं-२०५१ . वीर सं २५२१
मूल्य-१० रू	कृपया रोज १, सामायिक में १०८ श्लोकों का स्वाध्याय करें

श्री महावीर वाणी प्रचार केन्द्रः-

विनाशक वर्तमान युग में शान्ति के लिए भ. महावीर के वचनामृतों की आवश्यकता श्वास से भी ज्यादा जरूरी है। हथूण्डी तीर्थ के "**श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर**" को "**महावीर वाणी**" का प्रचारक केन्द्र बनाया गया है। यहां से विविध भाषाओं में **सचित्र महावीर वाणी की पुस्तकें, ओडियो तथा विडीयो केसेटों** का प्रकाशन होता रहेगा इसके लिए ११११११ रू. की योजना है। दाता का नाम आएगा। विश्वभर में प्रचार-प्रसार होगा। कृपया जरूर लाभ लेकर सहयोगी बनें।

स्वाध्याय कैसे करेंगे?

चरम तीर्थपति श्री महावीर प्रभु की सुंदर मूर्ति या तस्वीर को सामने रखकर, स्थापनाचार्यजी समक्ष सामायिक लेकर बैठें। विर वन्दना करीए। और ४८ मिनिट की २ घडी की सामायिक के अवकाश काल में "**महावीर वाणी**" की इस पुस्तक से भावार्थ सहित स्वाध्याय करीए। १०८ श्लोकों वाली "**महावीर वाणी**" के स्वाध्याय से एक माला गिनने जितना सुंदर लाभ पाइए। इसे नित्य क्रम बनाकर प्रतिदिन करीए प्रवास में पुस्तक साथ रखकर स्वाध्याय करें

प्रकाशन करने का सौभाग्य

पू. विद्वद्वर्य पंन्यासजी श्री अरूणविजयजी म.सा. की लेखन सामग्री, उनके चिन्तन की सुवास समान लेख सामग्री कब मिले इसकी हम चातकवत् इन्तजार करते रहते हैं। पूज्यश्री के सदुपदेश एवं प्रेरणा से बनी यह संस्था "**श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र**" प्रतिवर्ष कुछ न कुछ मुद्रित प्रसादि पाठकों के कर कमलों में अर्पण करती है। पूज्यश्री के मार्गदर्शन में सतत कार्यरत यह संस्था ज्ञान-शिक्षा के पवित्र उद्देश्य को लेकर सम्यगज्ञान का प्रचार-प्रसार शिबिरों तथा साहित्य प्रकाशन के माध्यम से हमेशा करती ही रहती है।

साहित्य क्षेत्र में कई पुस्तकें-आगम शास्त्र आदि प्रकाशित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत "महावीर वाणी" लघु पुस्तिका का प्रकाशन आज करते हुए हम गौरव अनुभव करते हैं। दिपावली पर्व पर पूज्यश्री ने दी हुई उत्तराध्ययन सूत्रं की देशना में से किंमति मुक्तकों का चयन यहां करके मोती की माला की तरह १०८ श्लोकों की यह माला बनाई है।

इसका पुस्तक रूप में प्रकाशन करने का सहयोग ज्ञानरूचिवाले दान दाताओं ने दिया, उनके हम आभारी है। पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने संकलन चयन किया। संगीता कुमारी मदनलालजी ने प्रतिलिपि की। तथा पू.हेमन्तवि.म.ने प्रुफ संशोधन किया। एवं मधुप्रेस ने इस की मुद्रण व्यवस्था संभाली। अत: सभी के हम आभारी हैं। आशा है सभी स्वाध्याय करेंगे।

-श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र-
ट्रस्टी गण-बम्बई

मेरी अपनी बातः-

-पंन्यास अरूणविजय म.

कई बार प्रायश्चित्त के रूप में गुरुदेव 'स्वाध्याय' करने का कहते हैं तब क्या करें? यह प्रश्न मन को सताता है। जैसा तैसा जो भी हाथ में आए उसे पढने से कोई स्वाध्याय हो नहीं जाता है। स्वाध्याय पाप धोने के लिए कर्म क्षय-निर्जरा होने के लिए, हैं। अतः ऐसा पढा जाय जो हमारी आत्मा को स्पर्श करें, यही स्वाध्याय का सही अर्थ है।

स्व=आत्मा' और उसका अध्याय अर्थात् अभ्यास। इस-तरह अपनी आत्मा का अभ्यास करना स्वाध्याय है। सच्चे अर्थ में स्वाध्याय है। आभ्यन्तर तप के ६ प्रकारों में चौथे क्रम पर स्वाध्याय रखकर पांचवा क्रम ध्यान का दिया है। क्रम दृष्टि से देखने पर ध्यान में प्रवेश करने की पूर्व भूमिका रूप स्वाध्याय की कक्षा बताई है।

प्रतिवर्ष श्री वीर प्रभु के निर्वाण कल्याणक के दिपालिका पर्व प्रसंग पर १४, ०) के दो दिन श्री वीर प्रभु की अन्तिमदेशना रूप उत्तराध्ययन सूत्र आगम शास्त्र की देशना व्याख्यान में पढता हुं, तब खास प्रेरणा जगी कि क्यों न सुंदर श्लोकों का चयन करके एक "**स्वाध्याय पोथी**" बनाएं? इसी का फल है कि आज यह लधु संस्करण तैयार कर पाया। "नित्य स्वाध्याय के लिए उपयोगी बने इसके लिए लघु संस्करण भावार्थ सहित संपादित कर रहा हुं। अनेक स्वाध्याय प्रेमीयों की प्यास बुझेगी। जिसमें मैं सहयोगी बनने का पुण्य संपादन करुंगा।

प्रस्तावना

-पंन्यास अरूणविजय म.

कर्म क्षय करके मुक्ति पाना यह प्रत्येक मुमुक्षुका लक्ष्य होना ही चाहिए। कर्म की निर्जरा के लिए सर्वज्ञ प्रभु ने तप का अनोखा मार्ग बताया है। बाह्य और आभ्यंतर २ प्रकार के तप के अवान्तर ६+ ६= १२ भेदों में द.ज्ञा.चा.तप सब की आराधनाओं का समावेश हो जाता है।

आभ्यंतर तप में स्वाध्याय भी है। बाह्य तप में उपवासादि करके, चारित्र धर्म की विरति की सामायिकादि के संवर धर्म में स्थिर होकर, आभ्यंतर तप के स्वाध्यायादि का सुंदर आलंबन लिया जाय, तथा उसमें वीर्याचार को स्फुरायमान किया जाय तो निश्चित रूप से कर्म क्षय विपुल प्रमाण में होता है।

"सज्झाय समो तवो नत्थिं" आगमवाणी के इस सोनेरी सुवाक्य का मर्म बरोबर समझलें-कि स्वाध्याय के जैसा तप नहीं है। अतः जिनको भी कर्मक्षय करके मुक्त बनना हो, उनको स्वाध्याय अवश्य करना ही चाहिए। साधक की साधना में सहायक नमित्त बनने के लिए यह "स्वाध्याय पुस्तिका" तैयार की गई है।

मुख्य रूप से परमात्मा श्री वीर प्रभु की अन्तिम देशना स्वरूप उत्तराध्ययन सूत्र आगम शास्त्र से उपदेशात्मक श्लोकों का चयन करके यहां अर्थ भावार्थ सहित प्रस्तुत किया है। सार्थ स्वाध्याय करने से मन समझता जाएगा 'वीर वाणी' के उपदेश की असर सबको हो और सभी कर्म निर्जरा करके मुक्त बनें ऐसी शुभ अभिलाषा रखता हुं। इस शुभ कार्य में मैं भी पुस्तक द्वारा निमित्त बनता हुं।

"श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर"

राजस्थान राज्य के पाली जिले में विश्व प्रसिद्ध राणकपुर तीर्थ के पास अरावली पर्वतमाला की तलहटी में आए हुए प्राचीनतम ऐतिहासिक-"**श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ**" के प्रांगण में एक अनोखा-अद्वितीय-अनुपम समवसरण वना है। आगे नदी और पीछे पर्वत माला के प्राकृतिक सौंदर्य के वीच इस रमणीय तीर्थ में श्री महावीर स्वामी भगवान की मनोहर मूर्ति है।

करीब १७०० वर्ष प्राचीन महान प्रभावक श्री राता महावीर प्रभु की रेती (वालु) की अद्भूत चमत्कारिक मूर्ति है। ३ गढ के गोल समवसरण में चौमुखजी के रूप में श्री महावीर प्रभु विराजेंगें। नीचे के प्रथम रजत गढ़ में श्री वीर प्रभु के २७ भवों के जीवन चरित्रों के सुंदर रंगीन चित्रपटों की व्यवस्था है।

बीच के विशाल हॉल में "महावीर वाणी" श्रवण करने की सुंदर व्यवस्था रहेगी। शान्ति से बैठकर ४ भाषा में "महावीर वाणी श्रवण कर सकेंगे' साथ ही ४ भाषा में सचित्र रंगीन पुस्तकें "महावीर वाणी' की रहेगी। साधक सामायिक में बैठकर शान्ति से स्वाध्याय कर सकेंगे। समवसरण के बाह्य-आभ्यंतर दिवालों पर विविधभाषा में लिखि गई "महावीर वाणी" शान्ति से पढी जा सकेगी।

इस तरह "श्री महावीर वाणी समवसरण मंदिर" नाम सार्थक सिद्ध होता है। आप इस तीर्थ की यात्रा करने कभी भी पधारिए। भक्ति भाव से तीर्थ की यात्रा करीए। महावीर वाणी का स्वाध्याय करीए। आपकी सेवा में विशाल धर्मशाला-भोजनशालादि सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध है। फालना या जवाई बांध स्टेशन से पधारिए। तीर्थ में आपकी शुभलक्ष्मी का सदुपयोग करके पुण्योपार्जन करीए।

-श्री हथूण्डी तीर्थ ट्रस्टी गण

— सौजन्य —

श्री वासुपूज्य स्वामी

जैन श्राविका आराधना मण्डल

अक्कीपेट, बेंगलोर - ५६० ०५३

के आर्थिक सहयोग से प्रस्तुत पुस्तिका

प्रकाशित की गई है।

माणुसत्ते असारम्मि, वाहीरोगाण आलए।
जरामरणघत्थंमि, खणंपि न रमामहं॥

मानुषत्वेऽसारे,, व्याधिरोगानामालये।
जरामरणग्रस्ते क्षणमपि न रमेऽहम्।।

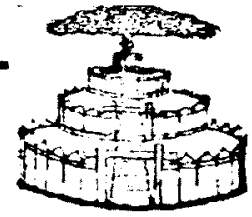

रोगों और व्याधियों के घर तथा जरा और मरण से ग्रसित इस असार मानव शरीर में एक क्षण भी सुख प्राप्त नहीं होता।

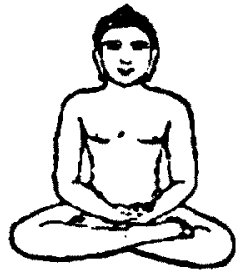

जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाय मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतुणो।।

जन्म दुःखं, जरा दुःखं, रोगाश्च मरणानि च।
अहो! दुःखो। हु संसारो, यत्र क्लिश्यन्ति जन्तवः।।

जन्म दुःख रुप है। बुढापा दुःख रुप है। रोग और मरण भी दुःख रुप है। यह सम्पूर्ण संसार ही दुःखमय है। जहाँ जीव को क्लेश होता है।

अम्मताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कटुयविवागा, अणुबंधदुहावहा॥

अम्वतातौ ! मया भोगा, भुग्त्ता विषफलोपमाः।।
पश्चात्तकटुकविपाका, अनुबन्धदुःखावहाः।।

हे माता पिता! मैं भोगों को भोग चुका हुँ। ये विषफल के समान हैं। बाद में कटुविपाक वाले और निरन्तर दुःख देनेवाले हैं।

असासए सरीरंमि, रइं नोवलभामह।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे॥

अशाश्वते शरीरे, रतिं नोपलभेऽहं।
पश्चात्पुरा वा त्याक्तव्ये, फेनवुद्बुदसन्निभे।।

इस शरीर को पहले या बाद में छोडना ही है। यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है। अतः इसमें मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा।
चइत्ताण इमं देहं गंतव्वमवसस्स मे॥

क्षेत्रं वास्तु हिरण्यं च, पुत्रदारांश्च बान्धवान्।
त्यक्त्वा इदं देहं, गन्तव्यमवशस्य मे॥

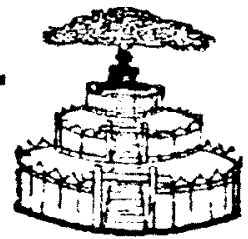

क्षेत्र-खुली भूमि, वस्तु, मकान, स्वर्ण, स्त्री, पुत्र तथा बन्धुजन और इस शरीर को भी छोडकर एक दिन मुझे यहाँ से लाचार होकर चला जाना है।

जह किंपागफलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुंदरो॥

यथा किम्पाकफलानां, परिणामो न सुन्दरः।
एवं भुक्तानां भोगानां, परिणामो न सुन्दरः॥

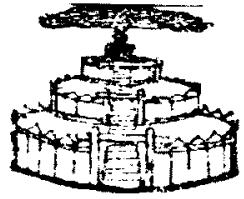

जिस प्रकार किम्पाक फल-विषफल का परिणाम सुन्दर नहीं होता इसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता है।

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छंतो सो दुही होई, छुहातण्हाइ पीडिओ॥

अध्वानं यो महान्तं, त्वपाथेयः प्रपद्यते।
गच्छन् स दुःखी भवति, क्षुधा तृषा पीडितः॥

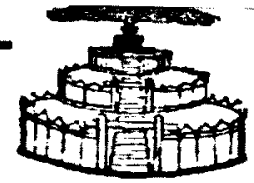

जो व्यक्ति बिना पाथेय लिए लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह मार्ग में चलते हुए भूख-प्यास से पीडित होकर कष्ट पाता है।

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भव।
गच्छंतो सो दुही होई, वाहिरोगेहि पीडिओ॥

एवं धर्ममकृत्वा, यो गच्छति परं भवं।
गच्छन् स दुःखी भवति, व्याधिरोगैः पीडितः।।

इसी तरह जो व्यक्ति धर्म का आचरण किये विना ही परलोक को प्रस्थान कर देता है, वह व्याधि और रोगों से पीडित होकर दुःखी होता है।

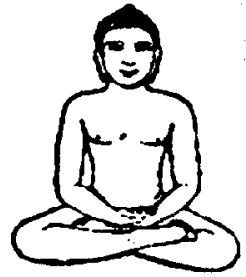

अद्धाणं जो महंतं तु, सपाहेज्जो पवज्जई
गच्छंतो सो सुही होइ, छूहातण्हाविवज्जिओ॥

अध्वानं यो महान्तं तु, सपाथेयः प्रपद्यते।
गच्छन् स सुखी भवति, क्षुधातृष्णाविवर्जितः।।

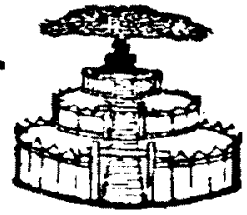

जो व्यक्ति पाथेय (मार्ग का संबल) साथ लेकर लम्बे मार्ग पर प्रयाण करता है वह भूख प्यास से पीडित न होकर सुखी होता है।

एवं धम्मंपि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं।
गच्छंतो सो सुही होई, अप्पकम्मे अवेयणे॥

एवं धर्ममपि कृत्वा, यो गच्छति परं भवं।
गच्छन् स सुखी भवति, अल्पकर्माऽवेदनः।।

इस प्रकार जो मानव धर्म करके परलोक को प्रयाण करता है, वह अल्पकर्मा जीव वेदना से रहित होकर सुखी होता है।

जहा गेहे पलित्तंमि, तस्स गेहस्स जो पहू।
सारभंडाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ॥

यथा गृहे प्रदीप्ते, तस्य गृहस्य यः प्रभुः।
सारभाण्डानि निष्काश्य, असारमपोहति।।

जैसे घर में आग लग जाने पर घर का स्वामी पहले मूल्यवान वस्तुओं को बाहर निकालता है और निस्सार वस्तुओं को छोड देता है।

एवं लोए पलित्तंमि जराए मरणेण य।।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ।।

एवं लोके प्रदीप्ते, जरया मरणेन च।
आत्मानं तारयिष्यामि, युष्माभिरनुमतः।।

इसी तरह हमको भी बुढापे और मृत्यु से जलते हुए इस संसार में से सारभूत अपनी आत्मा को बचाकर निकालनी चाहिए।

समया सव्वभूएसु सत्तुमित्तेसु वा जगे।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाय दुक्करं॥

समता सर्वभूतेषु, शत्रुमित्रेषु वा जगति।
प्राणातिपातविरतिः, यावज्जिवं दुष्करम्।।

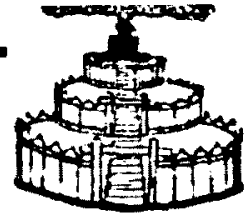

संसार के सभी जीवों पर, चाहे वे शत्रु हो अथवा मित्र समभाव रखना और आजीवन प्राणातिपत-हिंसा से विरक्त होना अत्यन्त दुष्कर है।

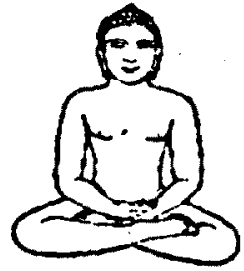

निच्चकालप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं।
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं॥

नित्यकालाप्रमत्तेन, मृषावादविवर्जनम्।
भाषितव्यं हितं सत्यं, नित्यायुक्तेन दुष्करम्।।

सदैव अप्रमत्त रहकर मृषावाद का त्याग करना तथा सतत उपयोग के साथ हितकारी सत्य बोलना बहुत कठिन है।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ,न मित्तवग्गा न सुआ न बंधवा।
इक्के सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं॥

न तस्य दुःखं विभजन्ते ज्ञातयो।,न मित्रवर्गाः न सुताः न बान्धवाः।

एकः स्वयं प्रत्यनूभवति दुःखं, कर्तारमेवं अनुयाति कर्म।।

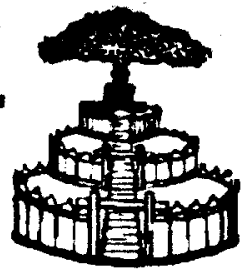

उस मृत्यु के मुख में जाते हुए व्यक्ति के दुःख को ज्ञाति जन, मित्र, पुत्र तथा बान्धव नहीं बांट सकते हैं। वह स्वयं अकला ही उन प्राप्त दुःखों को भोगता है, क्योंकि कर्म कर्ता का ही अनुगमन करता है।

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खित्तं गिहं धणं धन्नं च सव्वं।
सकम्मप्पबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दरं पावगं वा॥

स्यृक्त्वा द्विपदं च चतुष्पदं च, क्षेत्रं गृहं धनं धान्यं च सर्वम्।
स्वकर्माद्वितीयः अवशो प्रयति, परं भवं सुन्दरं पापकं वा।।

द्विपद, चतुष्पद, खेत, घर, धन-धान्य आदि सब कुछ यहीं छोड़कर वह पराधीन आत्मा अपने कृतकर्मों को साथ लिए सुन्दर-शुभ अथवा पाप-अशुभ गतिरूप परभव को जाती है।

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तो णन्तगुणो तहिं।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए॥

यथेहाग्निरुष्णो, इतोऽनंगुणस्तत्र।
नरकेषु वेदनोष्णाऽसाता वेदिता मया।।

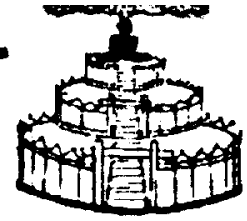

अग्नि यहाँ जितनी उष्ण है, उससे भी अनेक गुनी उष्णता हमने नरकों में भोगी है।

जहा इहं इमं सीयं, इत्तो णन्ता गुणं तहिं।
नरएसु वेयणा सीया अस्साया वेइया मए॥

यथेहेदं शीतमितोऽनंतगुणं तत्र।
नरकेषु वेदना शीताऽसाता वेदिता मया।।

यहाँ जितनी शीतलता (ठंडी) है उससे भी अनन्तगुनी शीत वेदना हमने नरकों में सहन की है।

कंदुंतो कंदुकुम्भीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलन्तम्मि, पक्कपुव्वो अणंतसो॥

क्रन्दन् कन्दुकुम्भीषूर्ध्वपादोऽघोशिराः।
हुताशने ज्वलति, पक्वपूर्वोऽनन्तशः॥

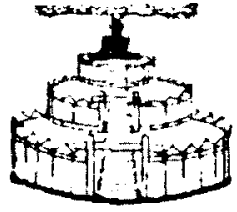

मैं नरक की कन्दुकुम्भियों में नीचे सिर और ऊपर पैर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हुँ।

अप्पा नई वेअरणी, अप्पा मे कूडसाल्मली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं।

आत्मा नदी वैतरणी, आत्मा मे कूटशाल्मली।
आत्मा कामदुधा धेनुः आत्मा मे नन्दनं वनम्।।

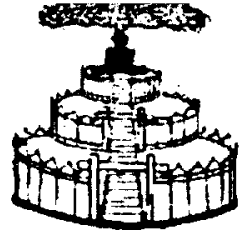

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, कामधेनु है, और नन्दन वन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तंच, दुप्पटिठयसुपट्ठिओ॥

आत्मा कर्ता विकर्ता च, सुखानां च दुःखानां च।
आत्मा मित्रममित्रं च, दुष्प्रस्थितस्सुप्रस्थितः।

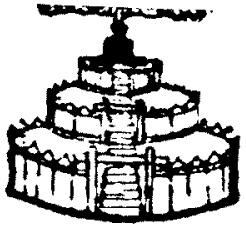

हमारी अपनी आत्मा ही अपने सुख-दुःखो की कर्ता एवं भोक्ता है। शुभ प्रवृत्तियों में प्रवृत्त आत्मा ही अपनी मित्र है, और दुष्प्रवृत्तियों में लीन आत्मा अपनी ही शत्रु है।

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसेव धम्मे विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो,।।

विषं तु पीतं यथा कालकूटं, हन्ति शखं यथा कुगृहीतम्।
एप एवं धर्मो विषयोपपन्नो, हन्ति वेताल इवाविपन्नः।।

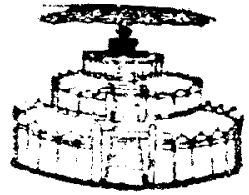

जिस प्रकार पिया हुआ कालकूट विष, उलटा पकडा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित वैताल नाशकारी होते हैं, उसी प्रकार विषय-विकारों से युक्त धर्म भी साधक के लिए विनाशकारी होता है।

धिरत्थु ते जसो कामी, जो तं जीवियकारणा।।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे।।

धिगस्तु ते अथशस्कामिन्। चस्त्वं जीवितकारणात्।
वान्तमिच्छस्यापातुं श्रेयस्ते मरणं भवेत।।

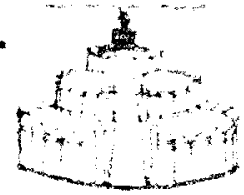

हे अपयश की इच्छा करने वाले! तुझे धिक्कार है कि तू भोगी जीवन के लिए वमन किये हुए भोगों को पुनः भोगना चाहता है। इससे तो तेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है।

एगे जिए जिआ पञ्च पञ्च जिए जिआ दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं॥

एकस्मिन् जिते जिताः पञ्च पञ्चसु जितेषु
जितादश।
दशधा तु जित्वा नु, सर्वशत्रून् जयाम्यहम्।।

एक को जीतने से पाँच जीत लिए गये, और पाँच को जीतने से दस पर विजय प्राप्त होगी, और दसों को जीतने से हम सब शत्रुओं को जीत सकते हैं।

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदिआणि अ।
ते जिणित्तु जहाणायं, विहरामि अहं मुणी॥

एक आत्मा जितश्शत्रुकषाया इन्द्रियाणि च।
तान् जित्वा यथान्यायं विहराम्यहं मुने।।

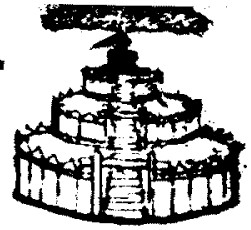

अविजित अपनी एक आत्मा ही शत्रु है। चार कषाय और पाँच इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं। इनको जीतकर मैं नीतिपूर्वक विचरण करता हूँ।

कसाया अग्गिणो दुत्ता, सुअसीलतो जलं।
सुअधारामिहया संता, भिन्ना हु न डहंति मे॥

कषाया अगनयः उक्ता, श्रुतशीलतपः जलम्।
श्रुत धाराभिहताः सन्तः भिन्ना हु न दहन्ति
माम्।।

कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नि कहा गया है, तथा श्रुत, शील, और तप उत्तम जल है। श्रुत, शील, तप की धारा से बुझी हूई तथा नष्ट हुई अग्नि मुझे नहीं जलाती हैं।

मणो साहरसीओ भीमो, दुट्ठसो परिधावइ।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं॥

मनश्साहसिको भीमो, दुष्टाश्वः परिधावति।
तं सम्यग्निगृह्णामि, धर्मशिक्षायै कन्थकम्।।

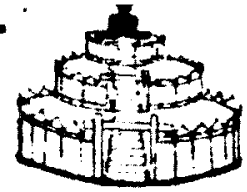

मन ही साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व है, जो चारों ओर इधर उधर दौडता रहता है। उसका मैं धर्मशिक्षा द्वारा भली-भांति निग्रह करता हूँ। अतः वह उत्तम जाति का कन्थक अश्व बन गया है।

कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे॥

कुप्रवचनपाखण्डिनः, सर्व उन्मार्गप्रस्थिताः।
सन्मार्गस्तु जिनाख्यातः, एष मार्गो हि उत्तमः॥

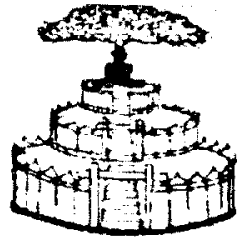

कुप्रवचन को मानने वाले सभी पाखंडी-व्रत-धारी लोग उन्मार्ग पर प्रयाण करते हैं। सन्मार्ग तो जिनेन्द्र द्वारा कथित है, और यही उत्तम मार्ग है।

जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं॥

जरामरणवेगेन, वाह्यमानानां प्राणिनाम्।
धर्मो द्वीपं प्रतिष्ठा च, गतिश्शरणमुत्तमम्।।

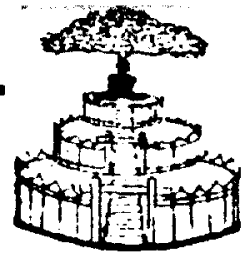

जरा (वृद्धावस्था) और मरण (मृत्यु) के महावेग से बहते-डूबते प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है।

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरंति महेसिणो॥

शरीरमाहुः नौरिति, जीव उच्यते नाविकः।
संसारोऽर्णव उक्तोऽयं, तरन्ति महर्षयः।।

शरीर को नौका कहा गया है और जीव को नाविक कहा जाता है तथा संसार को समुद्र कहा गया है, जिसे महर्षि तैरकर पार कर जाते हैं।

उग्गो खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोअम्मि पाणिणं॥

उदगतः क्षीणसंसारो, सर्वज्ञो जिनभास्करः।
से करिष्यन्यन्युद्योतं, सर्वलोके प्राणिनाम्।।

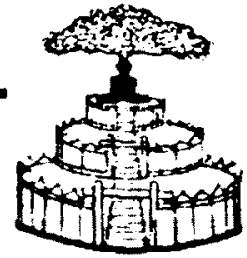

सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाला सर्वज्ञ-जिनेश्वर रुपी निर्मल सूर्य उदित हो चुका है। वह लोक के सभी प्राणियों के लिए ज्ञान प्रकाश फैलाता है।

तं ठाणं सासयं वासं, लोगग्गंमि दुरारुहं।
जं संपत्ता न सोअंति भवोहंतकरा मुणी॥

तं स्थानं शाश्वतं वासं, लोकाग्रे दुरारोहम्।
यत्सम्प्राप्ता न शोचन्ति, भवौघान्तकरा मुनयः।।

भव प्रवाह (जन्म-मरण) का अन्त करने वाले मुनि जिसे संप्राप्त करके शोक से मुक्त हो जाते हैं। वह स्थान लोक के अग्रभाग में शाश्वत निवास स्थान है, किन्तु वहाँ पंहुँचना दुष्कर है।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भये मोहरिए, विकहासु तहेव य।।१३।।

क्रोधे माने च मायायां लोभे च उपयुक्तता।
हास्ये भये मौखर्ये, विकथासु तथैव च।।

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता तथा विकथाओं में सतत उपयोग रहितता होनी चाहिए।

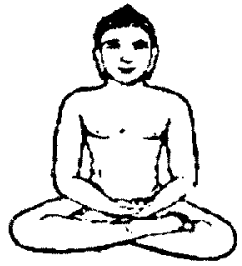

एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजओ।
असावज्जं मियं काले,भासं भासिज्ज पण्णवं।।१४।।

एतान्यष्टौ स्थानानि, परिवर्ज्य संयतः।
असावद्यां मितां काले, भाषां भाषेत प्रज्ञावान्।।

प्रज्ञावान् संयम के साधकों को उपर्युक्त आठ स्थानों का परित्याग करके अवसर के अनुसार दोषरहित और परिमित बोलना चाहिए।

नवि मुंडिएण समणो, न ॐकारेण बम्भणो।
न मुणि रण्णवासेणं, कुसचिरेण न तावसो

नापि मुण्डितेन श्रमणो ओंकारेण न ब्राह्मणः।
न मुनिररण्यवासेन, कुशचीवरेण न तापसः।।

केवल सिर मुँडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, ओं का जप करने से ब्राह्मण नहीं होता, वन में रहने से मुनि नहीं होता और कुश निर्मित चीवर (वस्त्र) धारण करने मात्र से कोई तपस्वी नहीं हो जाता।

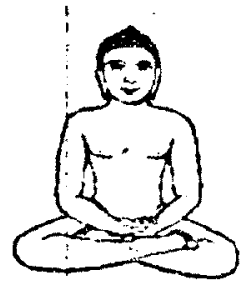

समयाए समणो होई, बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो॥

समतया श्रमणो भवति, ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः।
ज्ञानेन च मुनिर्भवति, तपसा भवति तापसः॥

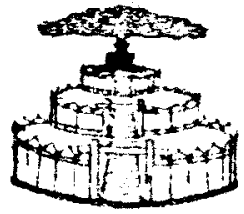

समभाव रखने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है, और तप करने से तपस्वी होता है।

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वइसो होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।।१७।।

कर्मणा ब्राह्मणो भवति, कर्मणा भवति क्षत्रियः।
वैश्यः कर्मणा भवति, शूद्रो भवति कर्मणा।।

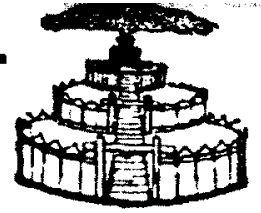

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है, और कर्म से शूद्र होता है।

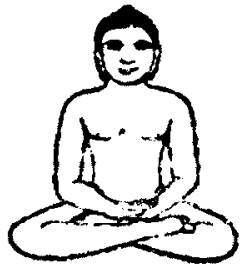

एए पाउकारे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वसंगविणिमुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥१८॥

एतान्प्रादुरकार्षीद बुद्धः, यै भवति स्नातकः।
सर्वकर्मविनिर्मुक्तं तं वयं ब्रूमो ब्राह्मणम्।।

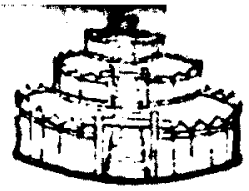

इन तत्वों का प्ररुपण अरिहंत ने किया है। इनके द्वारा जो साधक-स्नातक पूर्ण होता है, सर्व कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं।।

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्तो जिनैर्वरदर्शिभिः।।

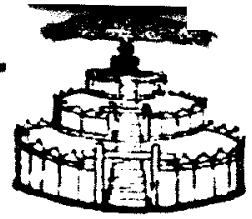

ज्ञान दर्शन चारित्र और तप (ये चारों मिलकर) मोक्ष मार्ग के रास्ते हैं, ऐसा केवलज्ञानी केवलदर्शी सर्वज्ञ जिनेन्द्र देवों का वचन है।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एअं मग्गमणुपत्ता, जीवा गच्छंति सोग्गइं॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा।
एनं मार्गमनुप्राप्ता, जीवा गच्छन्ति सुगतिम्।।

ज्ञान दर्शन तथा इसी प्रकार चारित्र और तप - इस कारण चतुष्टय युक्त मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव सद्गति में जाते हैं।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरिअं उवओगो अ,एअं जीवस्स लक्खणं॥

ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा।
वीर्यमुपयोगश्चैतज्जीवस्य लक्षणम्।।

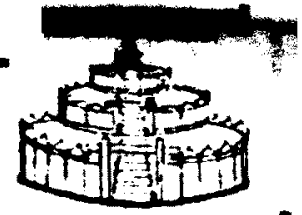

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप वीर्य और उपयोग - ये जीव के लक्षण हैं।

जीवाऽजीवा य बंधो अ, पुण्णं पावासवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिआ नव।।

जीवाऽजीवाश्रव, वन्धश्च पुण्यं पापाश्रवस्तथा।
संवरो निर्जरा मोक्षः, सन्त्येते तथ्या नव।।

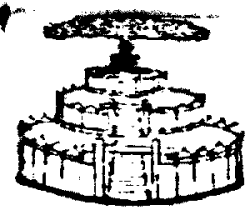

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष (कर्मों का सम्पूर्ण क्षय) - ये नौं तत्त्व हैं।

जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा, समाययंती अमइं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे, वेराणुवद्धा नरयं उविंति॥

ये पापकर्मभिः धनं मनुष्याः समाददति अमतिं गृहीत्वा।
प्रहाय ते पाशप्रवृत्ताः नराः वैरानुवद्धाः नरकं उपयान्ति

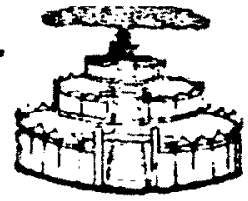

जो मानव अज्ञान एवं दुर्बुद्धिवश पाप कर्मों से धन का उपार्जन एवं संचय करते हैं, वे पाप बंधन में पडे हुए मनुष्य धन कों यहीं छोड़कर तथा वैर का अनुबंध करके नरक में उत्पन्न होता है।

जे गिद्धे कामभोएसु, एगे कूडाय गच्छइ।
न मे दिट्ठे परे लोए, चक्खुदिट्ठा इमा रई॥

यो गृद्धः कामभोगेपु, एकः कूटाय गच्छति।
न मया दृष्टः परो लोकः, चक्षुर्दृष्टा इयं रतिः।।

जो व्यक्ति कामभोगों में गृद्ध होता है, वह अकेला कूट (हिंसा तथा मृषावाद) की ओर जाता है। वह कहता है कि परलोक तो मैंने देखा ही नहीं किन्तु यह सांसारिक सुख तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

तहिआणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं।
भावेण सद्दहंतस्स, संमत्तं ति विआहिअं॥

तथ्यानां तु भावानां, सद्भावे उपदेशनम्।
भावेन श्रद्दधतः, सम्यक्त्वं इति व्याख्यातम्।।

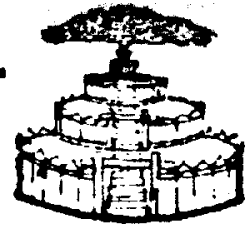

इन नौं तत्वों पर, उनके भावों पर जो भावपूर्वक श्रद्धा होती है, उसे सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव।
एमेव नन्नहत्ति अ, निसग्गरुइत्ति नायव्वो॥

यो जिनदृष्टान्भावांश्चतुर्विधान्, श्रद्दधाति स्वयमेव।
एवमेव नान्यथेति च, निसर्गरुचिरिति ज्ञातव्यः।।

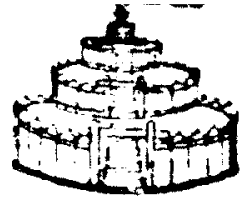

जिनेन्द्र भगवान द्वारा देखे गये और उपदेश दिये गये भावों में तथा द्रव्य - क्षेत्र-काल-भाव से विशिष्ट पदार्थों के विषय में यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है, इस प्रकार की जो स्वतः स्फूर्त श्रद्धा है, उसे निसर्ग रुचि स्मयक्त्व जानना चाहिए।

दंतसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं॥

दन्तशोधनादेरदत्तस्य विवर्जनम्।
अनवद्यैषणीयस्य, ग्रहणमपि दुष्करम्।।

दंत शोधन (दतौन) भी बिना दिये न लेना तथा दिया हुआ भी निर्दोष और एषणीय ही लेना, अत्यधिक दुष्कर है।

रागो दोसो मोहो, अण्णाणं जस्स अवगयं होइ।
आणाए रोअंतो, सो खलु आणारुइ नाम॥

रागो द्वेषो मोहोऽज्ञानं, यस्यापगतं भवति।
आज्ञया रोचमानः, स खलु आज्ञारुचिर्नाम।।

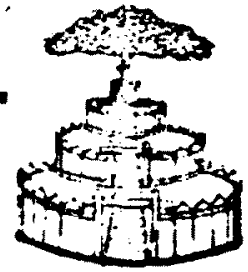

जिसके राग, द्वेष, मोह और अज्ञान नष्ट हो गये हैं, उसकी आज्ञा में रुचि रखना, आज्ञारुचि है।

दंसणनाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु।
जो किरिआ भावरुई, सो खलु किरियारुइ नाम।

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये सत्यसमितिगुप्तिषु।
यो क्रियाभावरुचिः, स खलु क्रियारुचिर्नाम।।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य समिति तथा गुप्तियों में जो क्रिया-भाव रुचि है, वह निश्चय ही क्रियारुचि है।

जो अत्थिकायधम्मं सुअधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।
सद्दहइ जिणाभिहिअं, सो धम्मरुइत्ति नायव्वो॥

योस्तिकाय धर्म, श्रुत धर्मं खलु चारित्रधर्मंच।
श्रद्धधाति जिनाभिहितं, स धर्मरुचिरिति
ज्ञातव्यः।

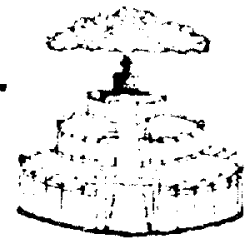

जो जिनेन्द्र कथित धर्मास्तिकाय आदि श्रुतधर्म और चारित्रधर्म पर श्रद्धा रखता है, उसे निश्चय ही धर्मरुचि होती है।

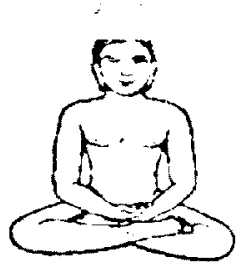

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न होन्ति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।।

नाऽदर्शनितो ज्ञानं, ज्ञानेन विना न भवन्ति चरणगुणाः।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः नास्त्यमुक्तस्य निर्वाणम्।।

सम्यक्त्व के विना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के विना चारित्र गुण नहीं होता, चारित्र गुण के विना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के विना निर्वाण नहीं होता।

तवो अ दुविहो वुत्तो, वाहिरब्भिंतरो तहा।
वाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भितरो तवो॥

तपश्च द्विविधमुक्तं वाह्यमाभ्यन्तरं तथा।
वाह्य षड्विधमुक्तमेवमभ्यन्तर तपः।।

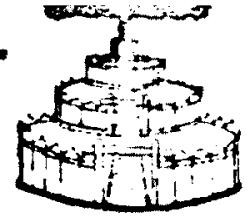

तप दो प्रकार के कहे गये हैं (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर बाह्य तप छह प्रकार के हैं और आभ्यन्तर तप छह प्रकार के हैं।

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण न(च) गिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ॥

ज्ञानेन जानाति भावान्, दर्शनेन श्रद्धत्ते।
चारित्रेण न(च) गृह्णाति, तपसा परिशुध्यति।।

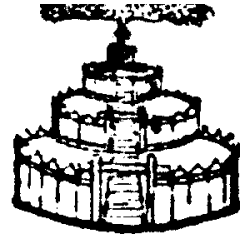

आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानती है, दर्शन से श्रद्धा करती है, चारित्र से कर्म-आस्रवों का निरोध करती है और तप से परिशुद्ध होती है।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो त्तिबेमि॥

क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, संयमेन तपसा च।
सर्वदुःखप्रहीणार्थाः प्रक्रामन्ति महर्षय इति ब्रवीमि।

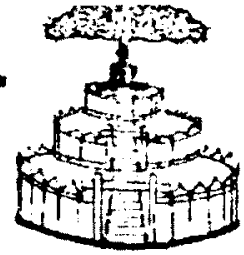

सभी दुःखों से मुक्त होने के लिए महर्षि संयम और तप के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मोंका सम्पूर्ण क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

कोहविजएणं भंते। जीवे किं जणइ? कोहविजएणं खंति जणयइ, कोहवेआणिज्जं कम्मं न वंधइ, पुव्ववंद्ध च निज्जरेइ॥

क्रोधविजयेन भदन्त!जीवःकिं जनयति? क्रोधविजयेन क्षान्तिं जनयति, क्रोधवेदनीयं कर्म न बध्नाति, पूर्वबद्धं च निर्जरयति।।

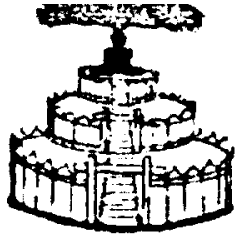

क्रोध पर विजय से जीवों को क्षमाभाव की प्राप्ति होती है। क्रोध वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा हो जाती है।

असासए सरीरंमि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुयसन्निभे॥

असाश्वते शरीरे, रतिं नोपलभेऽहं।
पश्चात्पुरा वा त्यक्तव्ये, फेनबुद्बुदसन्निभे।।

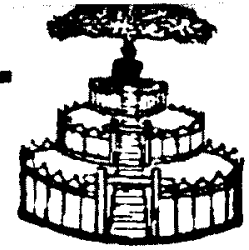

पहले या पीछे इसे छोठना ही है। यह शरीर पानी के बुलबुले के समान श्रणभंगुर है। अतः इसमें मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है।

एवं माणेणं ।७० ।। मायाए ।७१ ।। लोहेणं ।७२ ।।
नवरं मद्दवं, उज्जुभावं, संतोसं च जणइत्ति वत्तव्वं ।

एवं मानेन ।।७०।। मायया ।।७१।।लोभेन ।।७२।।

नवरं मार्दवं, ऋजुभावं, सन्तोषं च जनयति इति वक्तव्यम्।।

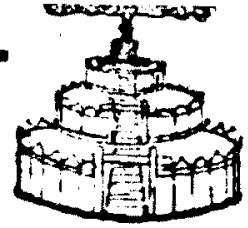

मान विजय से जीव मृदुता, नम्रता को प्राप्त करता है। मान वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

जहा उ पावगं कम्मं, रागद्दोससमज्जियं।
खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगग्गमणो सुण॥

यथा तु पापकं कर्म, रागद्वेषसमर्जितं।
क्षपयति तपसा भिक्षुः, तमेकाग्रमनाः शृणु।।

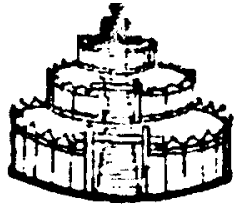

राग और द्वेष से अर्जित पाप कर्मों का भिक्षु जिस प्रकार क्षय करता है, उस प्रक्रिया को एकाग्र चित्त से सुनना चाहिए।

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइं गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारिअं॥

पतन्ति नरके घोरे, ये नराः पापकारिणः।
दिव्यां च गतिं गच्छन्ति, चरित्वा धर्ममार्यम्।।

जो मानव पापकर्म करते हैं वे घोर नरक में गिरते हैं और जो श्रेष्ठ धर्म का आचरण करते हैं वे देवगति में जाते हैं।

इमं सरीसं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं।
असासयावासमिणं, दुक्खक्केसाण भायणं।

इदं शरीरमनित्यमशुच्यशुचिसम्भवम्।
अशाश्वतावासमिदं, दुःखक्लेशानां भाजनम्।।

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशुचि से उत्पन्न हुआ है तथा अशुचि-मल-मूत्र आदि का उत्पत्ति स्थान है। इसमें आत्मा का आवास अशाश्वत है तथा यह शरीर दुःखों और क्लेशों का भाजन है।

पाणिवहमुसावाए, अदत्तमेहुणपरिग्गहा विरओ ।
राईभोअणविरओ, जीवो होइ अणासवो ॥

प्राणिवधमृषावादादत्तमैथुनपरिग्रहाद्विरतः।
रात्रिभोजनविरतो, जीवो भवत्यनाश्रवः।।

प्राणिवध (हिंसा), मृषावाद (असत्य) अदत्त (अदत्तादान-स्तेय) मैथुन, (अब्रह्मचर्य) परिग्रह और रात्रि भौजन की विरति से जीव आस्रव रहित होता है।

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइंदिओ!
अगारवो अ निस्सल्लो, जीवो होइ अणासवो॥

पञ्चसमितो त्रिगुप्तोऽकषायो जितेन्द्रियः।
अगौरवश्च निःशल्यो, जीवो भवत्यनाश्रवः।।

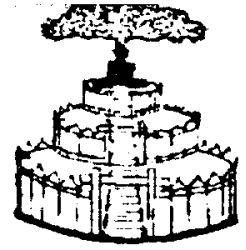

पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त कषायरहित जितोन्द्रिय, गौरव-गर्व से रहित और निःशल्य जीव अनास्रव होता है।

देवदानवगंधव्वा, जक्खरक्खसकिंनरा।
बंभयारी नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते॥

देवदानवगंधर्वाः, यक्षराक्षसकिन्नराः।
ब्रह्मचारिणो नमस्यन्ति, दुष्करं कुर्वन्ति तान्।।

जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर-सभी नमन करते हैं।

एस धम्मे धुवे णिच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेणं, सिज्झिस्संति तहावरे त्ति बेमि।

एषः धर्मो ध्रुवो नित्यः, शाश्वतो जिनदेशितः।
सिद्धाः सिध्यन्ति चानेन, सेत्स्यन्ति तथाऽपरे इति
ब्रवीमि।

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है। इस ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करके भूतकाल में अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं, और भविष्य में भी सिद्ध होंगे।

एवं तु सजयस्सवि, पावकम्मनिरासवे।
भवकोडिसंचिअं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ॥ त्रिभिविंशेषकम्॥

एवं तु संयतस्यापि, पापकर्मनिराश्रवे।
भवकोटिसञ्चितं कर्म, तपसा निर्जर्यते।।

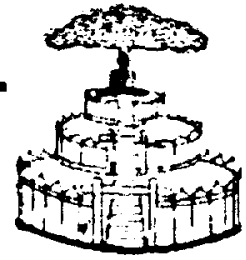

संयत के भी पाप कर्मों का निरास्रव (नये कर्मों का आगमन द्वार बन्ध) कर देने से करोडों जन्मों के संचित कर्म तप से नष्ट हो जाते हैं।

एअं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पंडिए त्तिबेमि॥

एतत्तपस्तु द्विविधं, यः सम्यगाचरेन्मुनिः।
स क्षिप्रं सर्व संसाराद्विप्रमुच्यते पंडित इति ब्रवीमि।।

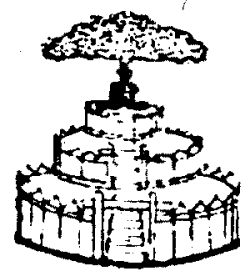

जो तत्त्ववेत्ता-मेधावी मुनि, इन दोनों प्रकार के तपों का सम्यक्तया आचरण करता है वह शीघ्र ही सर्व संसार (द्रव्य और भाव संसार) से विमुक्त हो जाता है।

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वाऽवि धणं भवे।
सव्वंपि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव॥

सर्वं जगद्यदि तव, सर्वं वाऽपि धनं भवेत्।
सर्वमपि तेऽपर्याप्तं, नैव त्राणाय तत्तव।।

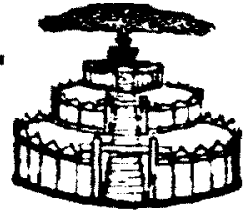

यदि सारा जगत और संसार का सारा धन भी आपको प्राप्त हो जाय तो वह सब भी आपके लिए अपर्याप्त ही होगा, और वह धन भी आपकी रक्षा नहीं कर सकेगा।

मरिहिसि राय जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।
इक्को हु धम्मो नरदेवताणं, न विज्जइ अन्नमिहेह किंची॥

मरिष्यसि राजन्! यदा तदा वा, मनोरमान् कामभोगान् प्रजहाय
एक एव धर्मो नरदेवत्राणं, न विद्यते अन्यत् इहेह किञ्चित्।

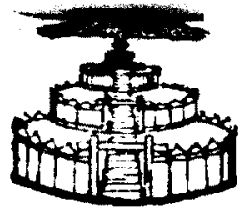

राजन्! जब आप इन मनोज्ञ कामभोगों को छोडकर मरोगे तब एक मात्र धर्म ही आपका रक्षक होगा। इसलिए हे नरेन्द्र! इस संसार में धर्म के अतिरिक्त इस प्राणी का कोई भी रक्षक नहीं है।

तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा, विवज्जणा बालजगस्स दूरा।
सज्झायेगंतनिसेवणा च सुत्तत्थसंचिंतणया धिइ च॥

तस्यैष मार्गः गुरुवृद्धसेवा, विवर्जना बालजनस्य दूरात्।
स्वाध्यायैकान्तनिषेवणा च, सूत्रार्थसञ्चिन्तना धृतिश्च।।

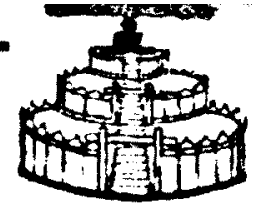

दुःखों से मुक्ति और सुख की प्राप्ति का यह मार्ग है-। गुरुजनों और वृद्धों की सेवा शुश्रूषा करना, अज्ञानी जीवों से दूर रहना, स्वाध्याय तथा एकान्त सेवन सूत्र और उसके अर्थ का चिन्तन तथा धैर्य धारण किये रहना।

रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तुकामेण समूलजालं
जे जेउवाया पडिवज्झियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुव्विं ॥

रागं च द्वेषं च तथैव मोहं उद्धर्त्तुकामेन समूलजालम्।
ये ये उपायाः प्रातपत्तव्याः, तान् कार्त्तुयिष्यामि
यथाणुपूर्वि।।

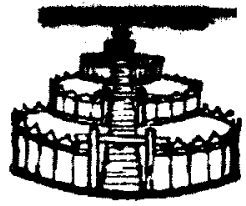

जो राग और द्वेष तथा उसी प्रकार मोह को मूल सहित उखाड़ने की इच्छा करनेवाला है, उसे अनेक प्रकार के उपाय करने - अपनाने चाहिए।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनिअत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स अहला जंति राइओ॥

या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्त्तते।
अधर्मं कुर्वतो, अफला यान्ति रात्रयः।।

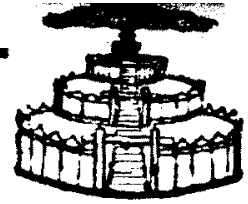

जो रात्रियां व्यतीत हो रही हैं, वे कभी वापस लौटकर नहीं आती। अधर्म करने वालों की रात्रियां निष्फल जाती है।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनिअत्तइ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सहला जंति राइओ।

या या व्रजति रजनी, न सा प्रतिनिवर्त्तते।
धर्मं च कुर्वाणस्य, सफला यान्ति रात्रयः।।

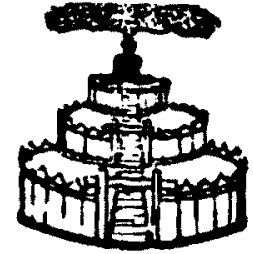

जो रात्रियां व्यतीत हो रही हैं वे कभी लौटकर वापस नहीं आती। धर्म करनेवालों की रात्रियां सफल होती है।

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुञ्जमाणा।
ते खुद्दए जीविअ पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे।।

यथा च किम्पाकफलानि मनोरमाणि, रसेण वर्णन भुज्यमानानि।
तानि क्षोदयन्ति जीवितं, पच्चमानान्येतदुपमाः कामगुणा
विपाके।।

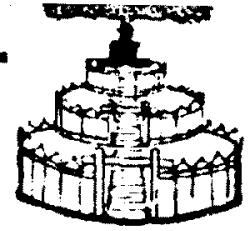

जिस प्रकार किम्पाक फल रस, रुप और खाने में मनोरम लगते हैं, किन्तु परिणाम में जीवन का अन्त कर देते हैं। इसी प्रकार कामगुण भी परिणाम में विनाशकारी होते हैं।

जे इदिआणं विषया मणुण्णा, न तेसु भावं निसिरे कयाई।
न यामणुण्णेसु मणंऽपिकुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी॥

ये इन्द्रियाणा विषया मनोज्ञाः, न तेषु भावं निसृजोत्कदाचित्।
नैवाऽमनोज्ञेषु मनोऽपि, कुर्यात्साधिकामः श्रमणस्तपस्वी॥

समाधि की इच्छावाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में कदापि रागभाव न करे और अमनोज्ञ विषयों में मन से द्वेष न करे।

नो इंदिअगिज्झो अमुत्तभावा, अगुत्तभावावि अ होइ निच्चो।
अज्झत्थहेउं निअओऽस्स बंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं।।

नो इन्द्रियग्राह्यः अमूर्त्तभावाद्, अमूर्त्तभावादपि च भवति नित्यः।
अध्यात्महेतुः नियतोऽस्य बन्धः, संसारहेतुं च वदन्ति बन्धम्।।

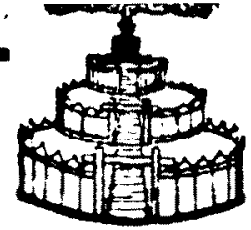

रुप, गन्ध आदि रहित अमूर्त भाव रुप-आत्मा, ईन्द्रियों द्वारा नहीं जानी जा सकती। लेकिन अमूर्त भाव नित्य होते हैं। आत्मा के राग द्वेषादि, आन्तरिक दोषों के कारण ही कर्म बन्ध होता है, और बन्ध ही संसार का हेतु कहा गया है।

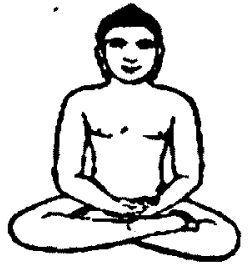

अब्भाहयंमि लोगंमि, सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहिं पडंतीहिं, गिहंस व रइं लभे॥

अभ्याहते लोके, सर्वतः परिवारिते।
अमोघाभिः पतन्तीभिः, गृहे ग रतिं लभावहे।।

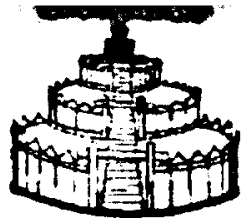

लोक पीडित है, चारों ओर से घिरा है। अमोघा आ रही है। इस दशा में हम घर में सुख का अनुभव नहीं कर पाते हैं।

रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्सहेउं अमणुमाहु॥

रुपस्य चक्षुग्रहणं वदन्ति , चक्षुषो रुपं ग्रहणं वदन्ति।
रागस्य हतुं समनोज्ञमाहुः, द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः।।

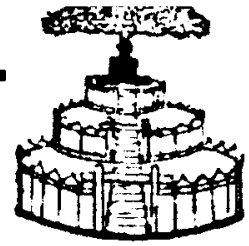

रुप को ग्रहण करनेवाला चक्षु कहा जाता है और चक्षु का ग्राह्य विषय रूप कहलाता है। राग के हेतु को मनोज्ञ कहा है और द्वेष के हेतु को अमनोज्ञ कहा है।

रूवेसु जो मिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालिअं पावइ से विणासं।
रागाउरे से जह वा पयगे, आलोअलोले समुवेइ मच्चुं॥

रुपेषु यो गृद्धिमुप ति तीव्रामकालिकं प्राप्नोति स विनाशाम्।
रागातुरः स यथ व पतङ्गः, आलोकलोलः समुप ति मृत्युम्।।

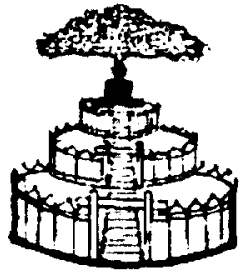

जो रूप में तीव्र आसक्ति रखता है वह राग में आतुर होकर अकाल में ही विनाश को प्राप्त करता है, विनष्ट हो जाता है। जिस प्रकार रुप लोलुप पतंगा (तीतली) मृत्यु को प्राप्त करता है, मर जाता है।

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहिं चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहीं विहारा अभिगम्म भिक्खं॥

धनेन किं? धर्मधुराधिकारे, स्वजनेन वा कामगुणैश्चैव।
श्रमणौ भविष्यावो गुणौघधारिणौ, बहिर्विहारौ अभिगम्य
भिक्षाम्॥

धर्म की धुरा को धारण करनेवाले को धन, स्वजन, कामभोगों से क्या प्रयोजन है, हमें तो गुणों के धारक, अप्रतिबद्ध विहारी शुद्ध भिक्षाजीवी श्रमण बनना चाहिए।

जहा य अग्गी अरणी असंतो, खीरे घयं तिल्लमहा तिलेसु।
एवमेव जाया सरिरंमि सत्ता, संमुच्छई नासइ नावचिट्ठे॥

यथा च अग्निः अरणावसन्, क्षीरे घृतं तैलमथ तिलेषु।
एवमेव जातौ ! शरीरे सत्वाः, सम्मुर्च्छन्ति नश्यन्ति नावतिष्ठन्ते।।

(पिता) पुत्रो ! जिस तरह अरणिकाष्ठ में अग्नि, दूध में घी और तिलों में तेल असत् होते हुए भी प्रगट होता है। उसी प्रकार असत् होते हुए भी शरीर में जीव उत्पन्न होता है, और शरीर के नाश के साथ ही चला जाता है।

सद्दस्स सोअं गुणं वयंति, सोअस्स सद्द गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु॥

शब्दस्य श्रोत्रं ग्रहणं वदन्ति, श्रोत्रस्य शब्दं ग्रहणं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः, द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः।।

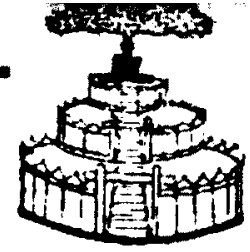

शब्द को ग्रहण करने वाली श्रोत्रेन्द्रिय है और शब्द को श्रोत्र का ग्राहक (ग्रहण करने योग्य विषय) बताया गया है। उसमें जो शब्द राग का हेतु होता है उसे समनोज्ञ और द्वेष के हेतु को अमनोज्ञ कहा गया है।

सद्देसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालिअ पावइ से विणासं।
रागाउरे हरिणमिएव्व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं॥

शब्देषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रमकालिकं प्राप्नोति सः विनाशम्।
रागातुरो हरिणमृग इव मुग्धः, शब्देऽतृप्तः समुपैति मृत्युम्।।

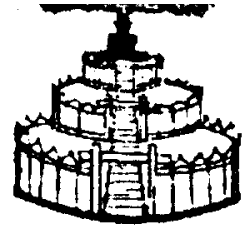

जो (मनोज्ञ) शब्दों में तीव्र आसक्ति रखता है वह राग में आतुर व्यक्ति अकाल में ही विनष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह शब्द में अत्यासक्त मूढ बना हुआ हरिण मृत्यु को प्राप्त होता है।

परिव्वयंते अनिअत्तकामे, अहो अ राओ परितप्पमाणे।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चुं पुरिसे जरं य।।

परिव्रजन् अनिवृतकामः, अह्नि च रात्रौ परितप्यमानः।
अन्यप्रमत्तो धनमेषयन्, प्राप्नोति मृत्युं पुरुषो जरां च।।

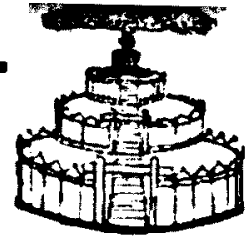

जो पुरुष कामनाओं से निवृत्त नहीं है, वह अतृप्ति की अग्नि से संतप्त होकर-भ्रात-दिन भटकता रहता है। दूसरों के प्रति आसक्त ऐसा पुरुष धन की खोज करता हुआ वृद्धावस्था और मृत्यु को प्राप्त करता है।

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्चमिमं अकिच्चं।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंतित्ति कहं पमाओ? ॥

इदं च मे अस्ति इदं च नास्ति, इदं च मे कृत्यं इदमकृत्यम्।
तं एवमेवं लालप्यमानं, हराः हरन्तीति कथं प्रमादः। ।

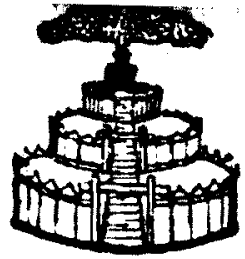

यह मेरे पास है, यह मेरे पास नहीं है। मुझे यह करना है, यह नहीं करना है-इस प्रकार व्यर्थ का बकवास करनेवाले व्यक्ति को मृत्यु उठा लेती है। ऐसी स्थिति में प्रमाद कैसा?

मणस्स भावं गहणं वयंति, तं रागहेउं तु मणुण्णमाहु।
तं दोसहेउं अमणुण्णमाहु, समो उ जो तेसु स विअरागो।

मनसः भावं ग्रहणं वदन्ति, तं रागहेतुं तु मनोज्ञमाहुः।
तं द्वेषहेतुममनोज्ञमाहुः, समश्च यस्तयोः स वीतरागः।।

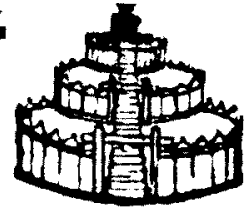

भाव (विचार, चिन्तन) को मन का ग्रहण करने योग्य विषय कहा जाता है। जो भाव राग का हेतु होता है वह मनोज्ञ कहा जाता है, और जो द्वेष का कारण बनता है वह अमनोज्ञ कहा जाता है जो उभयमें सम रहता हो वह वीतरागी है।

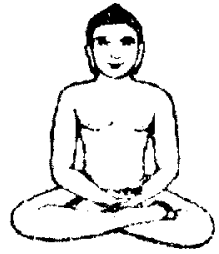

भावस्स मणं गहणं वयंति, मणस्स भावं गहणं वयंति।
रागस्स हेउं समणुण्णमाहु, दोसस्स हेउं अमणुण्णमाहु॥

भावस्य मनः ग्रहणं वदन्ति, मनसः भावं ग्रहणं वदन्ति।
रागस्य हेतुं समनोज्ञमाहुः, द्वेषस्य हेतुममनोज्ञमाहुः।।

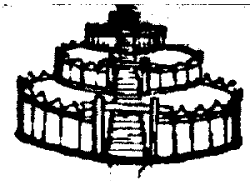

मन को भाव का ग्राहक-ग्रहण करनेवाला कहते हैं, और भाव को मन का ग्राह्य कहते हैं। राग का हेतु समनोज्ञ भाव कहा जाता है और अमनोज्ञ को द्वेष का कारण कहा है।

अच्चेइ कालो तरंति राईजो, नयावि भोग पुरिसाण निच्चा।
उविच्च भोग पुरिसं चयंति, तुमं जहा खीणफलं व पक्खी॥

अत्येति कालस्त्वरन्ते रात्रयो, न चापि भोगा पुरुषाणां नित्याः।
उपेत्य भोगाः पुरुषं त्यजन्ति, द्रुमं यथा क्षीणफलं वा पक्षिणः।।

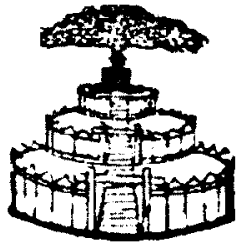

हे राजन्! समय व्यतीत हो रहा है रात्रियां भागती जा रही हैं। मानवीय भोग भी नित्य नहीं है। जिस प्रकार क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी छोड देते हैं उसी तरह पुण्य क्षीण हो जाने पर मानव काम भोग छोड देते हैं।

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अनिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभुआ, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा।।

क्षणमात्रसौख्या बहुकालदुःखाः, प्रकामदुःखा अनिकामसौख्या।
संसारमोक्षस्य विपक्षभूताः, खानिरनर्थानां तु कामभोगाः।।

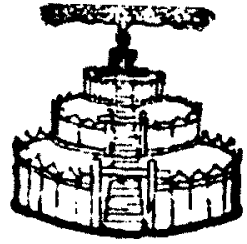

काम भोग क्षण मात्र के लिए सुखद है, और दीर्घकाल तक दुखदायी हैं। वे अधिक दुःख और अल्पसुख देते हैं।ये संसार से मुक्त होने में बाधक है। इसलिए अनर्थों की खान हैं।

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालिअं पावइ से विणासं।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिएव्व नागे॥

भावेषु यो गृद्धिमुपैति तीव्रामकालिकं प्राप्नोति स विनाशम्।
रागातुरः कामगुणेषु गृद्धः, करेणु मार्गापहृतो इव नागः।।

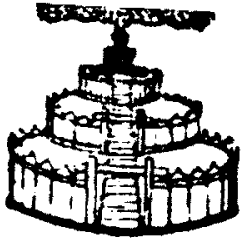

जो मोह में अत्यधिक गृद्धि करता है, वह उसी प्रकार विनाश को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार हाथिनी के प्रति आकृष्ट और कामगुणों में गृद्ध, राग में आतुर बना हुआ हाथी विनाश को प्राप्त हो जाता है।

अणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।
विआहिओ जं समुवेच्च सत्ता, कमेण अच्चंतसुही हवंति त्तिबेमि॥

अनादिकालप्रभवस्य एष, सर्वस्य दुःखस्य प्रमोक्षमार्गः।
व्याख्यातो यं समुपेत्य सत्तवाः, क्रमेणात्यन्तसुखिनो
भवन्तीति ब्रवीमि।।

अनादिकाल से उत्पन्न होते आये, समस्त दुःखो से मुक्ति का यह मार्ग कहा गया है, जिसे सम्यक् प्रकार से अपनाकर जीव क्रम से अत्यंत सुखी हो जाते हैं।

तं इक्कगं तुच्छ शरीरगं से, चिईगयं दहिअ उ पावगेणं।
भज्जा य पुत्तोवि अ नायओ वा, दायारमन्नं अणुसंकमंति॥

तदेककं तुच्छशरीरकं तस्य, चितिगतं दग्ध्वा तु पावकेन।
भार्या च पुत्रोऽपि च ज्ञाताश्च, दातारमन्यमनुसंक्रामति।।

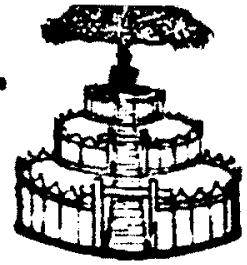

आत्मा रहित इस तुच्छ शरीर को चिता में भस्म करके स्त्री, पुत्र तथा ज्ञाति -जन किसी अन्य आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं।

उवनिज्झइ जीविअमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं।
पंचालराया वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं।।

उपनीयते जीवितमप्रमादं, वर्णं जरा उरित नरस्य राजन्।
पाञ्चालराजा! वचनं श्रृणु, मा कार्षीः कर्माणि महालयानि।।

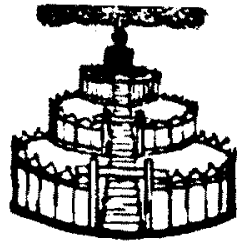

हे राजन्। किसी प्रकार का प्रमाद अथवा भूल किये बिना कर्म जीवन को प्रत्येक क्षण मृत्यु के समीप ले जा रहा है और यह वृद्धावस्था शरीर के लावण्य का हरण कर रही है। अतः हे पांचालराज! मेरे वचनों को सुनो और अधिक पापकर्मों को मत करो।

अट्ठकम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं।।
जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिअत्तइ॥

अष्ट कर्माणि वक्ष्यामि, आनुपूर्व्यां यथाक्रमम्।
यैः बद्धोऽयं जीवः, संसारे परिवर्त्तते।।

मैं आनुपूर्वी और यथाक्रम से आठ कर्मों का प्रतिपादन करता हूँ, जिन से बंधा हुआ यह जीव (चतुर्गतिरुप) संसार में पर्यटन करता है।

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पणसग्गमणंतगं।
गंठिअसत्ताईअं, अंतो सिद्धाण आहिअं॥

सर्वेषां चैव कर्मणां, प्रदेशाग्रमनन्तकम्।
ग्रन्थिकसत्त्वातीतगन्तर्सिद्धानामाख्यातम्।।

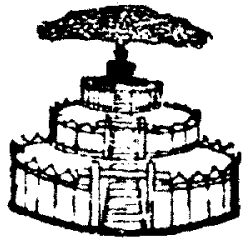

एक समय में (एक आत्मा द्वारा वद्ध - ग्राह्य होने वाले) सभी कर्मों के प्रदेशाग्र (कर्म-परमाणु पुदगल दलिक का परिमाण) अनन्त है। यह अनन्त परिमाण ग्रन्थिक सत्वातीत। (जिन्होने ग्रन्थि भेद नहीं किया है ऐसे अभव्य जीवों) से अनंत गुणान्यो अधिक तथा सिद्धों के अन्तवर्ती-अनन्तवें भाग जितने कहे गये हैं।

सल्लं कामा, विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।
कामे पत्थयमाणा य, अकामा जंति दुग्गइं॥

शल्यं कामा विषं कामाः कामा आशीविषोपमाः।
कामान् प्रार्थयमानाश्च, अकामा यान्ति दुर्गतिम्।

जगत के काम-भोग शल्य है, विष है और आशीविष सर्प के समान हैं। जो लोग काम-भोगों की इच्छा तो रखते हैं लेकिन किसी कारणवश भोग नहीं पाते, वे भी दुर्गति में जाते हैं।

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।
माया गइ पडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं॥

अधो व्रजति क्रोधेन, मानेन अधमा गतिः
मायया गतिप्रतिघातो, लोभादुभयतो भयम्।।

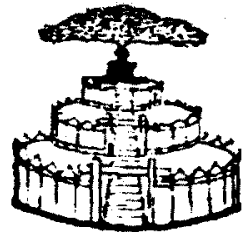

क्रोध से नीच गति और मान से अधम गति की प्राप्ति होती है तथा छल - कपट - माया सुगति को रोक देती है और लोभ से इस लोक और परलोक - दोनों में भय होता है।

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं।
सव्वेसुवि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं॥

सर्वजीवानां कर्म तु, संग्रहे षड्दिशागतम्।
सर्वैरपि प्रदेशैः, सर्व सर्वेण वद्धकम्।।

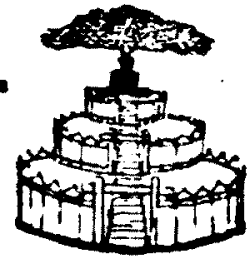

सभी जीव छह दिशाओं में रहे कार्मण वर्गणाओं का ग्रहण करते है। वे सभी कर्म पुद्गल परमाणु आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ सर्व प्रकार से बद्ध-आश्लिष्ट हो जाते हैं।

तम्हा एएसि कम्माणं, अणुभाग विआणिआ।
एएसिं संवरे चेव, खवणे अ जए बुहे त्तिंबेमि।।

तस्मादेतेषां कर्मणामनुभागान्विज्ञाय।
एतेषां सम्वरे चैव, क्षपणे च यतेत बुधः इति ब्रवीमि।।

इसलिए इन कर्मों के अनुभागों को जानकर बुद्धिमान - तत्त्वज्ञानी साधक इन कर्मों के संवर और क्षय करने में प्रयासरत बनें।

तवो जोई जीवो जोइठाणँ, जोगा सुआ सरीरं कारिसंगं।
कम्मे एहा संजमजोगसंती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं॥

तपो ज्योतिर्जीवो ज्योतिः स्थानं, योगास्त्रुचः शरीरं करीषांगम्।
कर्म एधाः संयमयोगाः शान्तिः। होमेन जुहोमि ऋषीणां
प्रशस्तम्।।

तप ज्योति है। जीवात्मा ज्योतिस्थान है। मन-वचन-काया-ये तीनों योग कड़छियाँ हैं। शरीर कण्डे है। कर्म ईंधन है। संयम की प्रवृत्ति शान्ति पाठ है। मैं ऐसा ऋषियों द्वारा प्रशस्त यज्ञ करता हूँ।

इह जीवीए राय असासयंमि, धणिअं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो।
से सोअइ मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परम्मि लोए॥

इह जीविते राजन्नशाश्वते, अतिशयेन तु पुण्यानि अकुर्वाणः।
स शोचति मृत्युमुखोपनीतः, धर्ममकृत्वा परस्मिंश्च लोके।।

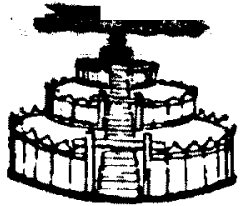

हे राजन्। इस नश्वर मानव-जीवन को पाकर जो विपुल पुण्य-धर्म नहीं करता, वह मृत्यु के समय शोक करता है और धर्म न करने के कारण परलोक में भी शोक करता है।

जा तेऊण ठिई खलु, उक्कोसा उ समयमब्भहिआ।
जहण्णेणं पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहिआइं उक्कोसा।।

या तैजस्याः स्थितिर्खलूत्कृष्टा सा तु समयाभ्यधिका।
जघन्येन पद्मायाः, दर्शैव मुहूर्त्ताधिकानि उत्कृष्टा।।

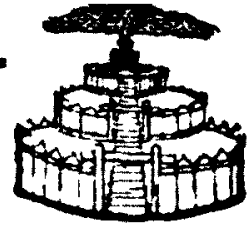

कुष्ण लेश्या की जो उत्कुष्ट स्थिति है, वही एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग (प्रमाण) है।

तेजोलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही व उससे एक समय अधिक की पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागरोपम की है।

किण्हा नीला काऊ, तिण्णिऽविएसा उ अहमलेसाओ।
एआहिं तिहिंऽवि जीवो, दुग्गइं उववज्जइ बहुसो॥

कृष्णा नीला कापोतास्तिस्त्रोऽप्येताऽधमलेश्याः
एताभिस्तिसृभिरपि जीवो, दुर्गतिमुपपद्यते।।

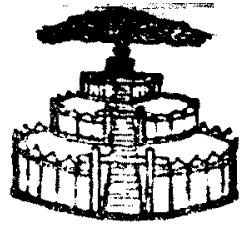

कृष्ण, नील, कापोत - ये तीनों ही अधर्म अशुभ लेश्याएँ है। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार दुर्गति में उत्पन्न होता है।

लध्धूणवि उत्तमं सुई, सद्दहणा पुणरपि दुल्लहा ।।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा
पमायए ।।

लब्ध्वाऽपि उत्तमा श्रुतिं, श्रद्धा पुनरपि दुर्लभा।
मिथ्यात्वनिषेवकोजनः, समयं गौतम! मा प्रमादयेः।।

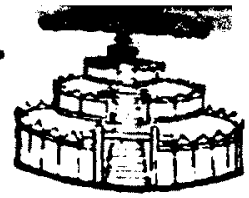

उत्तम धर्म का श्रवण होने पर भी इस सद्धर्म पर श्रद्धा होना और भी कठिन है क्योंकि बहुत से मनुष्य मिथ्यात्वी भी होते हैं। मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। अतः हे गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।

अवउज्झिअ मित्तबंधवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइअं गवेसए, समयं गोयम! मा पमायए॥

अपोह्य मित्रबान्धवं, विपुलं चैव धनौ। घसंचयम्।
मा तद् द्वितीयं गवेषय, समयं गौतम! मा प्रमादयेः।।

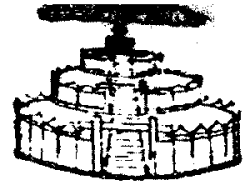

मित्र, बान्धव, विपुल धन संचय का परित्याग कर, पुनः दुसरी बार मित्रादि की इच्छा मत करो और उनकी तलाश भी मत करों । हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत कर।

तेऊ पम्हा सुक्का, तिण्डवि एआ उ धम्मलेसाओ।
एआहिं तिहिंडवि जीवो, सुग्गइं उवज्जइ॥

तैजसो पद्म शुक्लास्तिस्त्रोऽप्येता धर्मलेश्याः
एताभिस्तिसृभिरपि जीवः सुगतिमुपपद्यते।।

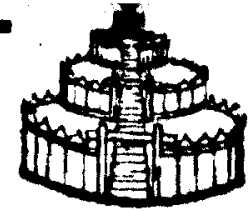

तेजस्, पद्म, शुक्ल-ये तीनों धर्म शुभ लेश्या है। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार सुगति में उत्पन्न हुआ है।

तम्हा एयासि (ण) लेसाणं, अणुभावे (गे) वियाणिआ।
अप्पसत्था उवज्जित्ता, पसत्था उ अहिट्ठिए (आसि)ज्जवेखिए।

तस्मादेतासां लेश्यानामनुभावे विजाय।
अप्रशस्तास्तु वर्जयित्वा, प्रशस्तास्तु अधितिष्ठेद् इति ब्रवीमि।।

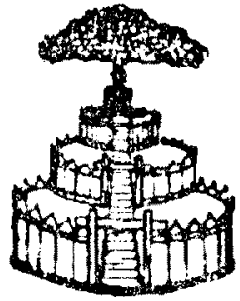

इसलिए (विवेकी व्यक्ति) इन लेश्याओं के अनुभाग (विपाक रस विशेष) को जानकर इनमें से अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं को वर्जित - परित्याग करके प्रशस्त (तेजो, पद्म, शुक्ल) लेश्याओं में अधिष्ठित - स्थिर हो जाए।

लध्धूणवि माणुसत्तणे, आरिअत्तं पुणरवि दुल्लहं।
बहवे दस्सुआ मिलक्खुआ, समयं गोयम ! मा पमायए।।

लब्ध्वाऽपि मानुषत्वं, आर्यत्वं पुनरपि दुर्लभम्।
बहवोदस्यवः म्लेच्छाः, समयं गोतम ! मा प्रमादयेः।।

मनुष्य जन्म पाने के बाद भी आर्यत्व की प्राप्ति और भी दुर्लभ है, क्योंकि बहुत से मनुष्य दस्यु तथा म्लेच्छ भी होते हैं। अतः हे गौतम! एक क्षण का भी प्रमाद मत कर।

लद्धुणवि आरिअत्तणं, अहीणपंचेंदिअया हु दुल्लहा।
विगलिंदिअया हु दीसई, समयं गोअम! मा पमायए॥

लब्ध्वाऽपि चार्यत्वं अहीनपंचेन्द्रियता हु।
विकलेन्द्रियता हु दृश्यते, समयं गौतम! मा प्रमादयेः॥

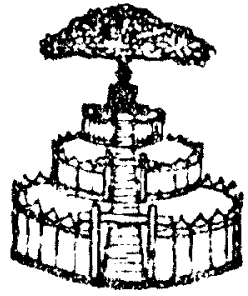

आर्यत्व प्राप्ति के बाद भी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की परिपूर्णता या प्राप्ति और भी कठिन है, क्योंकि बहुत से आर्य भी परिपूर्ण ज्ञानेंद्रियों वाले दिखाई नहीं देते हैं। अतः हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

ಶ್ರೀ ಸಿದ್ಧಾರೂಢ ಭಾರತೀ ಸ್ವಾಮಿಗಳು

ಹುಬ್ಬಳ್ಳಿ

ted By : Madhu, B'lore Ph: 2871036